सत्यांश

संपादक

सूर की दृष्टि

कृष्णभक्त कवि और 'सूरसागर' के रचयिता सूरदास दृष्टिहीन थे - यह सर्वविदित तथ्य है, पर उनकी दृष्टिहीनता जन्म के साथ की थी या बाद की - इस पर विवाद है। मध्य काल में ही सूरदास नाम के कई भजन गायकों का उल्लेख मिलता है। कालांतर में तो सभी नेत्रहीनों विशेषकर जन्मांधों को सूरदास कहने की परिपाटी बन गई, जो आज तक सुदूर गाँव-देहात में प्रचलित है। एक किंवदंति के अनुसार, वल्लभाचार्य ने सूरदास से पूछा था कि सूर यानी नेत्रहीन होकर भी भगवत्भजन क्यों नहीं करते! यही तुम्हारे लिए उत्तम-उपयुक्त कर्म-धर्म है, इसमें गहरे गोते लगा सकते हो - 'सूर ह्वै के घिघियात काहे को हौ, कछु भगवल्लीला भजन बरनन करौ।' सूरदास चाहे जन्मांध रहे हों अथवा बाद में अंधता के शिकार हुए हों, अब इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं रह गया है, किंतु विद्वानों ने इसकी गहरी पड़ताल करने की जरूरत समझी है; क्योंकि शृंगार एवं वात्सल्य का जैसा सजीव चित्र सूर ने खींचा है, वैसा तो खुले नेत्र वाले कवियों से भी नहीं हो सका। बिना दुनिया देखे इस प्रकार की जीवंत चित्रावली, दृश्यावली को काव्यात्मक रूप में ढालना सामान्यतः संभव नहीं।

सूरदास ने 'सूरसागर' के कुछ पदों में अपने को तुच्छ, दीन-हीन और परोक्षतः जन्मांध कहते हुए भगवत्कृपा की कामना की है। जनश्रुति है कि दिखाई न देने के कारण एक बार वे कुएँ में गिर गए थे, तब श्रीकृष्ण ने स्वयं आकर उन्हें बाहर निकाला था। इसका ध्वनार्थ हो सकता है कि जिसने उन्हें निकाला, वह श्रीकृष्ण के समान धर्मरक्षक एवं दयावान था। इन सबके बावजूद, विद्वान मान नहीं पाते कि वे जन्मांध रहे होंगे। उनका मानना है कि सूर जीवन के किसी मोड़ पर रोगवश अंधग्रस्त हुए होंगे। सूर के पदों में प्रकृति की रंग-बिरंगी छवियों, रम्य छटाओं और श्रीकृष्ण-राधा के रूप-सौंदर्य के नाना भाँति चित्रण में अंग-उपांगों के कायिक और सात्विक अनुभावों का जैसा संयोग मिलता है; उसकी संश्लिष्टता में ब्रज संस्कृति की जैसी मनोहारी कलात्मकता झलकती है, वह अविस्मरणीय है। बालक कृष्ण की एक-एक हरकत, शरारत, चेष्टा, हाव-भाव के सूक्ष्म निरीक्षण का साक्ष्य स्वयं क्रिया करता प्रतीत होता है। दृश्य जगत का यथार्थ बिंब उकेरते यमुना के कछार, कदंब के पेड़, घुटने के बल चलते बालकृष्ण का आँगन में अपने प्रतिबिंब पर हँसते हुए लोटपोट होना, स्वर्णिम स्तंभों में अपनी ही परछाईं देखकर उसे दूसरा बालक समझ लेना तथा उसे खिलाने के प्रयत्न की दृश्यानुभूति कोई जन्मांध व्यक्ति कैसे कर सकता है? फिर बिना अनुभूति के अभिव्यक्ति जीवंत नहीं हो सकती। खैर, जब सूरदास की दृष्टि की बात है तो स्वाभाविक सवाल खड़ा होता है कि जो देख नहीं सकता, उसकी दृष्टि पर विचार क्यों? फिर यदि चर्म-चक्षुओं से परे अंतर्दृष्टि को दृष्टि माना जाए तो नेत्रहीन को दृष्टिहीन कहना अनुचित होगा। अंतर्दृष्टि बहिर्दृष्टि से अधिक सशक्त होती है। इसी के सहारे नेत्रहीन अपने व्यक्तिगत काम निबटाते हैं; उसके स्थूल स्तर पर ही सही, अवलंबित होने की विवशता की वजह से रुपए-पैसे पहचानने से लेकर लिखने-पढ़ने तक के सारे बाहरी काम करने का उन्हें अभ्यास होता है। इस प्रकार सूरदास की दृष्टि का अभिप्राय उनकी अंतर्दृष्टि से जुड़ता है।

जिस प्रकार आँख होने भर से, मुँह होने भर से सब लोग अच्छा देख-बोल नहीं पाते, उसी प्रकार भक्ति रस में आकंठ डूबे संत-साधक के लिए यह जरूरी नहीं कि वह देखकर ही देखे। बिना 'देखे' भी वह सब कुछ देखता-समझता है। सूरदास को अलौकिक प्रतिभाशाली, गहन अंतर्दृष्टि-संपन्न माना गया है, जिसके कारण वे सजीव चित्रण में सफल-समर्थ हो सके। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि श्रद्धान्वित थी। वे अष्टछाप और पुष्टिमार्ग के अग्रगण्य कवि थे। कहा जाता है कि गोकुल के श्रीनाथ जी के मंदिर में प्रतिमा का जैसा शृंगार किया जाता था, उसका वैसा ही तत्काल चित्रण कीर्तनकार के नाते सूरदास भजन-गायन में करते थे। एक बार भजन-मंडली के मित्रों ने उतावलेपन में उनकी परीक्षा लेने के लिए श्रीकृष्ण की प्रतिमा को स्नान कराकर बिना वस्त्र पहनाए ही नियमित भजन करने को कहा, तब सूरदास ने गाया कि 'देख री हरि नंगमनंगा, जलसुत भूषण अंग विराजत बसनहीन छवि उठत तरंगा।' सारे मित्र लज्जित हुए और उन्होंने समझ लिया कि सूरदास के पास जरूर कोई दृष्टि है, जो उन्हें दिखाती है। एक अन्य पद के अनुसार, जब वे मंदिर के द्वार पर बैठे थे, तब श्रीकृष्ण उनसे टकरा गए। सूरदास ने उनकी बाँहें पकड़ लीं। श्रीकृष्ण हाथ छुड़ाकर आगे बढ़ने लगे तो सूर ने कहा कि मुझे दीन-निर्बल जानकर हाथ छुड़ाकर जा रहे हो, पर मन-मंदिर से निकलकर दिखलाओ, तब तुम्हें

सबल मानेंगे - 'बाँह छुड़ाए जात हौं निर्बल जानि के मोहिं, हृदय तें जब जाहुगे सबल गिनोगे तोहिं।' भाट गायक होकर भी वही सूरदास तत्कालीन राजा के कहने पर उसकी प्रशंसा में कसीदे नहीं काढ़ते और स्पष्ट मना कर देते हैं कि 'नाहिन रह्यो मन में ठौर, नंद नंदन अछत कैसे आनिए उर और।' अस्तु, सूर ने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं के वर्णन में जिस निष्णाततता का परिचय दिया, उसका नमूना देखने योग्य है, जहाँ घुटनों बल सरकते-चलते, मुख पर दही लेपे, हाथ में मक्खन लिए, धूल-धूसरित बालकृष्ण की अद्‌भुत प्रस्तुति की है। उनके ललाट पर गोरोचन का तिलक लगा है, मुख पर काले घुँघराले बाल ऐसे लटक रहे हैं जैसे भौंरों का झुंठ मधुपान करने के निमित्त मुँह के आसपास मँडरा रहा हो -

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटरुनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिए।
कंठुला कंठ बज्र के हरि नख राजत रुचिर हिय।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख का सत कल्प जिय।

इसी तरह का भाव 'जशोदा हरि पालने झुलावै' में मिलता है। निम्न पद में ग्वाल-बाल सखाओं के संग धूल से सने, पैजनिया बजाते, हंस-शिशु की तरह मुस्कराहट बिखेरते छोटे श्रीकृष्ण के बालरूप की बानगी देखते ही बनती है। वे कभी दरवाजे की ओर आते हैं तो कभी घर की तरफ लौटते हैं -

बिहरत बिबिध बालक संग।
डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरि धूसर अंग।
चलत मग, पग बजति पैजनि, परस्पर किलकात।
मनौ मधु मराल छौना बोलि बैन सिहात।
तनक कटि पर कनक करधनि, छीन छबि चमकाति।
मनौ कनक कसौटिया पर लीक सी लपटाति।
कबहुँ द्वारै दौरि आवत, कबहु नंद निकेत।
सूर प्रभु कर गहति ग्वालिनि, चारु चुंबन-हेत।

बहरहाल, सूर ने श्रीकृष्ण की प्रेमपरक शृंगारिकता और अप्रतिम सौंदर्य का अद्वितीय निरूपण किया है। प्रकृति के वसंत को कृष्णमय रूप देने में सूर का सानी नहीं। पनघट लीला, जल क्रीड़ा, हिंडोला, माखन चुराने की लीलाएँ पढ़कर भी लगता है कि सूर के अंतःचक्षु दिव्य भी थे। इसकी बदौलत उन्होंने कृष्णलीलाओं का आँखों देखा जैसा हाल बखान किया है - 'देख री हरि के चंचल नैन, खंजन मीन मृगज चपलाई, नहिं पटतर इक सैन'; अर्थात् श्रीकृष्ण की चंचल आँखें खंजन पक्षी, मीन एवं मृग-शावकों की तरह स्थिर नहीं रहतीं। राधा को लोकप्रियता दिलाने के ख्याल से सूर की कल्पना साहित्य-समाज को अनुपम देन है। वे श्रीकृष्ण का चित्र बनाती राधा को ऐसे दर्शाते हैं जैसे स्वयं चित्रकारी कर रहे हों - 'कर कपोल, भुज धरि जंघा पर; लेखति माइ नखनि की रेखनि।' यह सब ऐसा प्रसंग है जो बाह्य नयन और अंतःचक्षु के संयोग बिना असंभव-सा लगता है। बिना आँखवाले सूर ने राधा और कृष्ण के आँखों ही आँखों के मिलन को इस प्रकार चित्रित किया कि पाठक-श्रोता भावमुग्ध, रसविभोर होकर ठगे-के-ठगे रह जाते हैं - 'औचक ही देखी तहँ राधा, नैनु विशाल भाल रोरी; सूर स्याम देखत ही रीझै, नैन नैन मिलि परी ठगोरी।'

भोजपुरी के किसी कवि ने तुलसी, सूर और कबीर को लक्षित करके कहा है कि 'असल हाल सब बाभना कहलस, अनहरा कहलस तब; बचल खुचल सब जोलहा कहलस, और कहे सो गप।' यहाँ बाभना का अभिप्राय तुलसीदास, अन्हरा का अर्थ सूरदास और जोलहा का मतलब कबीरदास से है। सूर नेत्रहीन होने के बावजूद प्रकाशस्तंभ सदृश थे; जिन्होंने अपने अंतर्लोचन से न केवल संसार को देखा-समझा, वरन् उसकी नैसर्गिकता के साथ श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप के दर्शनपान करके उसकी गीतात्मक प्रस्तुति भी की, जो किसी प्रत्यक्ष चक्षु-सीमा के बूते से बाहर की बात थी। इसी कारण सूर को सूर्य के समान प्रदीप्त करने वाला बताया गया है -'सूर सूर तुलसी शशि, उडुगन केशव दास, अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकाश।'